चयनधर्मिता का प्रश्न और 'आषाढ़ का एक दिन'

डॉ. लवकुश कुमार
सहायक प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग
कालिंदी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

शोध सारांश:
मोहन राकेश का रचनाकाल 20वीं शताब्दी के छठें और सातवें दशक से संबंधित रहा है। यह वहीं समय है जब नई कविता और नई कहानी आंदोलन को विस्तार मिला। राकेश जी अपने नाटकों में इसी दौर के परिवेश को व्यंजित करने की कोशिश की है। व्यक्तिवाद, अस्तित्ववाद और लघुमानववाद जैसी धारणाओं को केंद्र में रखकर उन्होंने अपनी नाटकों की रचना की। 'आषाढ़ का एक दिन' द्वंद्व प्रधान नाटक है। यह द्वंद्व व्यक्ति स्वतंत्रता और परिस्थितियों, भावना और यथार्थ, सत्ता और जनसामान्य तथा एक ही व्यक्ति के विभाजित व्यक्तित्व के बीच बरकरार है। जहाँ व्यक्ति चयनधर्मिता के प्रश्न को लेकर सत्त द्वन्द्वग्रस्त रहता है। नाटक का नायक कालिदास और नायिका मल्लिका है। यह कालिदास, आदि कवि कालिदास न होकर आधुनिक भावबोध से युक्त मध्यमवर्गीय पलायनवादी है। नायिका मल्लिका भावना के भ्रमरजाल में फासी रहती है। अन्य प्रमुख पात्रों में मल्लिका की माँ अम्बिका, विलोम, प्रियंगुमंजरी और दन्तुल है। गौण पात्रों में मातुल, निक्षेप, रंगिणी, संगिनी, अनुस्वार और अनुनासिक हैं। राकेश जी ने रंगमंच को ध्यान में रखकर ही अपने नाटकों की रचना की। उनका मानना है कि नाटक जैसी साहित्यिक विधा का रंगमंच से अटूट संबंध होना चाहिए।

बीज शब्द :
चयनधर्मिता, द्वंद्व, त्रासदी, आत्मकेंद्रित और भावना

मोहन राकेश ने तीन महत्त्वपूर्ण नाटकों की रचना की। सन् 1958 में 'आषाढ़ का एक दिन', 1963 में 'लहरों के राजहंस' और 1969 में 'आधे अधूरे'। मोहन राकेश का रचना काल 20वीं शताब्दी के 6ठे-7वे दशक से संबंधित रहा है। यह वहीं समय है जब नई कविता और नई कहानी को विस्तार मिला। ये नाटककार से पूर्व एक प्रसिद्ध कहानीकार और उपन्यासकार के रूप में स्थापित हो चुके थे। और नई कहानी आंदोलन के प्रनेता थे। राकेश जी अपने नाटकों में भी इसी दौर के परिवेश को व्यंजित करने की कोशिश की है। व्यक्तिवाद, क्षणवाद, अस्तित्ववाद और लघुमानववाद जैसी धारणाओं को केंद्र में रखकर नाटकों की रचना की।

'आषाढ़ का एक दिन' सतही तौर पर ऐतिहासिक स्वरूप का जान पड़ता है। जोकि वास्तव में है नहीं। मोहन राकेश न तो इतिहास का पुनर्लेखन की कोशिश की और न ही किसी ऐतिहासिक पात्र के जीवन वृत्त को रचने का प्रयास किया। इस नाटक में गुप्तकालीन परिवेश तथा कालजयी रचनाकार कालिदास की चर्चा कुछ दूसरा ही संकेत छोड़ने का प्रयास किया है। वह निश्चित तौर पर अतीत का पहाड़ा न होकर आधुनिक भावबोध को उभारने से जुड़ा है। नाटक के नायक कालिदास को लेकर कई आपत्तियाँ उठाई गई है। राकेश जी इस सन्दर्भ में नाटक लहरों के राजहंस की भूमिका में लिखते हैं, "अभिज्ञान शाकुंतलम, कुमारसम्भव तथा मेघदूत पढ़कर यदि कालिदास का ऐसा ही चरित्र उनके मन में बनता है तो क्या कहा जा सकता है? रूढ़िगत संस्कार ही जहाँ व्यक्ति का विवेक बन जाएँ, वहाँ और आशा करना व्यर्थ

है। हमारे यहाँ परंपरा ही कुछ ऐसी है कि हम अपने जातीय प्रतीकों को सदा अतिमानवीय धरातल पर रखकर देखना चाहते हैं। उनमें मानवीयता का निदर्शन हमें चोट पहुँचाता है। इसका मुख्य कारण शायद यही है कि हमें स्वयं अपनी मानवीयता में विश्वास नहीं है, अपने यथार्थ में आस्था नहीं है। क्योंकि अपने से कुछ आशा नहीं होती, इसलिए यह बात असंभव प्रतीत होती है कि मानवीय धरातल पर रहकर भी जीवन में कुछ महान किया जा सकता है। केवल उसी धरातल पर रहकर किया जा सकता है, यह तो शायद सुनने में बहुत भारी पड़े। आषाढ़ का एक दिन में कालिदास का जैसा भी चरित्र है, वह उनकी रचनाओं में समाहित उनके व्यक्तित्व से बहुत हटकर नहीं है; हाँ, आधुनिक प्रतीक की निर्वाह की दृष्टि से उसमें थोड़ा परिवर्तन अवश्य किया गया है।"[1] कालिदास के नाटकों को पढ़ने के दौरान उनकी एक ऐसी छवि उभरी जिसे ध्यान में रखकर नाटककार ने नायक कालिदास को गढ़ा।

मध्यमवर्गीय अवसरवादी मानसिकता ने जिस व्यक्तिवाद को जन्म दिया उसके समक्ष व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा सामाजिक परिस्थितियों के दबाव के बीच सत्त द्वंद्व उपस्थित रहा है।

यह कालिदास मोहन राकेश का आत्म प्रक्षेपित नायक है। जिसपर उन्होंने व्यक्तिवादी दर्शन तथा अस्तित्ववादी धारणा का आरोप किया है। यही वज़ह है कि 'आषाढ़ का एक दिन' का नायक कालिदास, आदि कवि कालिदास से बिल्कुल अलग-थलग आत्मकेंद्रित, दायित्वशून्य तथा पलायनवादी चरित्र ठहरता है। मध्यमवर्गीय अवसरवादी मानसिकता ने जिस व्यक्तिवाद को जन्म दिया उसके समक्ष व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा सामाजिक परिस्थितियों के दबाव के बीच सत्त द्वंद्व उपस्थित रहा है। यह कालिदास ऐसे ही द्वंद्व से संचालित चरित्र है। जो एक तरफ महत्त्वाकांक्षाओं को वरीयता देता है तो दूसरी तरफ परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से टूटता बिखरता रहता है।

'आषाढ़ का एक दिन' एक द्वंद्व प्रधान नाटक है। यहाँ द्वंद्व सभी स्तरों पर बरकरार है। अलग-अलग चरित्रों के बीच, एक ही चरित्र के विभाजित व्यक्तित्व के बीच, व्यक्ति और समाज के बीच, कर्तव्य और भावना के बीच तथा राजसत्ता की क्रूरता और जनसामान्य की मासूमियत के बीच।

इस नाटक का केन्द्रीय कथ्य एक रचनाकार के चयनधर्मिता के द्वंद्व से जुड़ा है। राकेश जी यह दिखाने की कोशिश करते हैं कि, कलाकार की यह समस्या सनातन रही है। एक तरफ वह महत्त्वाकांक्षी होने की वज़ह से राजसत्ता से भी जुड़ना चाहता है तो दूसरी तरफ उसकी सृजनशीलता उसे राजसत्ता के विरोध के लिए उकसाती है! वे जर्नल ऑफ़ साऊथ एशियन लिटरेचर, ईस्ट लैंसिस, मिशिगन के संपादक डॉ.कालों कपोला को एक साक्षात्कार में बताते हैं, "मैं इस नाटक (आषाढ़ का एक दिन) में आज के लेखक की दुविधा को चित्रित करना चाहता था- लेखक जो राज्य या इसी प्रकार की अन्य संस्थाओं द्वारा प्रस्तावित लोभ के प्रति आकर्षित होता है और दूसरी ओर कहीं अपने प्रति प्रतिबद्ध भी होता है।"[2] राजसत्ता भोगने की लालसा तथा व्यवस्था विरोधी की भूमिका के बीच का चयन किसी भी काल के रचनाकार का द्वंद्व रहा है। नायक कालिदास राजधिकारियों की क्रूरता के लिए राजसत्ता के अन्याय का विरोध करता है। इसका कथन है, "मैं राजकीय मुद्राओं से क्रीत होने के लिए नहीं हूँ।"[3] किन्तु दूसरी तरफ सामाजिक परिस्थितियों से तंग आकर अभावोपेक्षा और भर्त्सना की ज़िंदगी से विवश होकर राजसत्ता की ज़िंदगी का स्वीकार कर लेता है।

इस नाटक का नायक कालिदास जीवन पर्यंत दायित्व और महत्त्वाकांक्षा के बीच सत्त झूलता रहता है। यही वज़ह है कि न तो वह अपने कर्तव्य का समुचित पालन कर पाता है और न ही अपनी भावना का पूरी तरह से वरण कर पाता है। इस कालिदास की समस्या है जिससे वह प्रेम करता है उससे विवाह नहीं और जिससे विवाह उससे प्रेम नहीं! राजाधिकारी के रूप में भी अपने दायित्वों का निर्वाह नहीं कर पाता और अंत में अपनी सर्जनात्मक प्रेरणा को भी अंगीकार नहीं कर पाता। यह न केवल इस कालिदास की विडम्बना है बल्कि मध्यमवर्गीय दायित्वशून्य पलायनवादी व्यक्ति की विडम्बना है।

नाटककार ने स्वयं लिखा है, "मैं व्यक्तियों की यंत्रणा को उभारने की कोशिश करता हूँ।"[4] व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा परिस्थितियों के संघात के बीच द्वंद्व से उत्पन्न यंत्रणा को ही राकेश जी ने अपने नाटकों का कथ्य बनाया है। अपनी कुशल रंग दृष्टि, रंग संकेतों तथा बिम्बों के द्वारा नाटककार ने इस द्वंद्व और यंत्रणा को जीवंत बनाने का प्रयास किया है। नाटक के पहले ही अंक में छाज से धान फटकती हुई अम्बिका तथा आषाढ़ की पहली बारिश में भीग कर आई मल्लिका के माध्यम से कर्तव्य तथा भावना के द्वंद्व को उजागर करने का प्रयास किया गया है। मल्लिका का जीवन प्रेम और भावना को आधार बनाकर चलता है। उसके लिए प्रेम एक ऐसा अनुभव है जो "नील कमल की तरह कोमल और आर्द्र, वायु की तरह हल्का और स्वप्न की तरह चित्रमय!" वह अपनी माँ अम्बिका

से कहती है, "मैंने भावना में एक भावना का वरण किया है। मेरे लिए वह सम्बन्ध और सब सम्बन्धों से बड़ा है। मैं वास्तव में अपनी भवना से प्रेम करती हूँ जो पवित्र है, कोमल है, अनश्वर है...।"[5] इसके विपरीत अम्बिका सामाजिक कटु सत्यों से परिचित चरित्र है। उसका वैध्व्य जीवन दुःखपूर्ण रहा है। जहाँ जीवन की कटुता से मुहँ नहीं मोड़ा जा सकता है। इसी वज़ह से वह मल्लिका से कहती है, "तुम जिसे भावना कहती हो वह केवल छलना और आत्म-प्रवंचना है।...भावना में भावना का वरण किया है!... मैं पूछती हूँ भावना में भावना का वरण क्या होता है? उससे जीवन की आवश्यकताएँ किस तरह पूरी होती है?" [6]

अम्बिका कालिदास के प्रेम का इस वज़ह से विरोधी है क्योंकि उसकी धारणा है "वह (कालिदास) आत्म-सीमित व्यक्ति है। संसार में उसे अपने सिवा किसी और से मोह नहीं।" वह मल्लिका से कहती है, "मैं ऐसे व्यक्ति को अच्छी तरह समझती हूँ। तुम्हारे साथ उसका इतना ही सम्बन्ध है कि तुम एक उपादान हो जिसके आश्रय से वह अपने से प्रेम कर सकता है, अपने पर गर्व कर सकता है।"[7] अम्बिका कटु यथार्थवादी चरित्र है। उसका यह कहना, उसके (कालिदास) प्रभाव से मेरा घर नष्ट हो रहा है। सामाजिक दायित्वों से रहित कालिदास के पलायनवादी चरित्र को उद्घाटित करता है। क्योंकि अम्बिका इस बात को जानती है कि बिना विवाह के स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध सामाजिक लोकोपवाद का कारण होता है।

"तुम जिसे भावना कहती हो वह केवल छलना और आत्म-प्रवंचना है।...भावना में भावना का वरण किया है!... मैं पूछती हूँ भावना में भावना का वरण क्या होता है? उससे जीवन की आवश्यकताएँ किस तरह पूरी होती है?"

इसके विपरीत मल्लिका कालिदास से निःस्वार्थ व निःशर्त प्रेम करती है। वह कालिदास की काव्य प्रतिभा से परिचित है। वह अपना सर्वस्व निक्षावर करके भी कालिदास को एक प्रसिद्ध रचनाकार के रूप में देखना चाहती है। नाटक के तीसरे अंक में उसका स्वगत कथन इस बात की ओर इशारा करता है, "मैंने कभी तुम्हें अपने से दूर नहीं होने दिया। तुम रचना करते रहे, और मैं समझती रही कि मैं सार्थक हूँ, मेरे जीवन की भी उपलब्धि है। ...मैं टूटकर भी अनुभव करती रही कि तुम बन रहे हो। क्योंकि मैं अपने को अपने में न देखकर तुममें देखती थी।"[8] मल्लिका कालिदास पर किसी बंधन को थोपना नहीं चाहती। वह विवाह तथा सामाजिक आवश्यकता से परिचित होकर भी कालिदास पर विवाह के लिए दबाव नहीं डालती। स्वयं एक प्रकार से वारांगनत्व को स्वीकार कर परिस्थितियों के हाथो ठगी जाती है। मल्लिका के माध्यम से राकेश जी ने नारी की यंत्रणा को भी उद्घाटित करने का प्रयास है। सूरदास जी भी भ्रमरगीत के माध्यम से नारी जीवन की त्रासदी एवं पुरुष स्वेच्छाचारिता को सबसे पहले उजागर करना चाहा। 'आषाढ़ का एक दिन' सतही तौर पर कुछ ऐसी ही समस्या से जुड़ा प्रतीत होता है। परन्तु वास्तव में यह नारी यंत्रणा और त्रासदी का नाटक न होकर मानव जीवन की यंत्रणा और त्रासदी का नाटक है। हालाँकि इसकी नायिका मल्लिका ही है। इसी के इर्द-गिर्द नाटक की पूरी कथा चलती रहती है। फिर भी नाटककार ने बड़ी ही कुशलता से यह दर्शाने का प्रयास किया है कि, आधुनिक जीवन परिस्थितियों से केवल नारी जीवन ही आहत नहीं है बल्कि पुरुष भी आहत है।

इस नाटक में तीन नारी पात्र हैं। मल्लिका, अम्बिका और प्रियंगुमंजरी। मल्लिका अपनी ही भावनाओं को वरीयता देने के कारण आहत है। अम्बिका अपनी पुत्री मल्लिका तक अपने विचारों को न संप्रेषित करने के कारण आहत है, तो प्रियंगुमंजरी महत्त्वाकांक्षा और वैवाहिक जीवन के बीच तालमेल न बैठने के कारण आहत है। पुरुष पात्रों में कालिदास और विलोम की भी यदि चर्चा की जाए तो कुछ ऐसा ही प्रतीत होता है। कालिदास जहाँ भावना और कर्तव्य के बीच झूलता है और अंततः अपने आपको निर्वासित करता है। तो विलोम की त्रासदी यह है कि, सामाजिक दायित्वों के निर्वाह करने के बावजूद भी उसे निराशा ही मिलती है। यह भी मल्लिका से प्रेम करता है। किन्तु उसे मिलता है मल्लिका का प्रेम रहित देह! वह भी एक रचनाकार है। लेकिन अवसरों का उसे लाभ नहीं मिलता। उसका कथन है, "विलोम क्या है? एक असफल कालिदास। और कालिदास? एक सफल विलोम।"[9] उसकी इसी त्रासदी को उभारता है।

नाटक का पहला अंक चरित्रों के मानसिक द्वंद्व के साथ-साथ सत्ता और जनसामान्य के बीच के द्वंद्व को भी उभारता है। घोड़ो की टापों की आवाज़ को सुनकर अम्बिका राजाधिकारियों की ओर इशारा करती हुई कहती है, "कभी वर्षों में ये आकृतियाँ यहाँ दिखाई देती हैं। और जब भी दिखाई देती हैं, कोई न कोई अनिष्ट होता है। कभी युद्ध की सूचना

आती है, कभी महामारी की।"[10] नाटक के पहले अंक में नाटककार ने कथा क्रम को आगे बढ़ाते हुए यह सूचना दी है कि, उज्जयिनी के शासक वररुचि के माध्यम से कवि कालिदास को राजकवि पद का प्रस्ताव भेजा है। आरंभ में राजसत्ता के प्रति विरक्त कालिदास मल्लिका के समझाने पर उज्जयिनी जाने को तैयार हो जाता है। निक्षेप का कथन है, "योग्यता एक चौथाई व्यक्तित्व का निर्माण करती है। शेष पूर्ति प्रतिष्ठा द्वारा होती है।"[11]

कालिदास अपने ग्राम-प्रांतर की भूमि को अपनी सर्जनात्मक प्रेरणा मानता है। उसे डर है कि इसे छोड़कर कही वह अपनी सर्जनात्मक प्रेरणा न खो दे। उसका कथन है, "यह ग्राम-प्रांतर मेरी वास्तविक भूमि है। मैं कई सूत्रों से इस भूमि से जुड़ा हूँ। उस सूत्रों में तुम हो, यह आकाश और ये मेघ हैं, यहाँ की हरियाली है, हिरणों के बच्चे हैं, पशुपाल हैं। यहाँ से जाकर मैं अपनी भूमि से उखड़ जाऊँगा।" इसपर मल्लिका उसे समझाती है, "यह क्यों नहीं सोचते कि नयी भूमि तुम्हें यहाँ से अधिक संपन्न और उर्वरा मिलेगी। इस भूमि से तुम जो कुछ ग्रहण कर सकते थे, कर चुके ही। तुम्हें आज नयी भूमि की आवश्यकता है, जो तुम्हारे व्यक्तित्व को अधिक पूर्ण बना दे।... कोई भूमि ऐसी नहीं जिसके अंतर में कोमलता न हो। तुम्हारी प्रतिभा उस कोमलता का स्पर्श अवश्य प् लेगी।"[12]

नाटक का दूसरा अंक जीन प्रमुख तथ्यों को उजागर करता है। उनमें अनेका-नेक रचनाओं को रचकर कालिदास का सुविख्यात होना, कालिदास का राजदुहिता प्रियंगुमंजरी से विवाह होना और कश्मीर के शासक पद पर कालिदास का आरूढ़ होना है। उज्जयिनी से कश्मीर जाने के क्रम में कालिदास अपने सैन्य अधिकारियों और पत्नी प्रियंगुमंजरी के साथ अपने ग्राम-प्रांतर में क्षणिक विश्राम करता है। दूसरे अंक में कालिदास कही भी प्रत्यक्ष उपस्थित नहीं है न ही वह कोई संवाद बोलता है। नाटककार ने आधुनिक भावबोध के सृजन के साथ-साथ राजसत्ता की अकुशलता, राजाधिकारियों की अदुर्दर्शिता तथा शिक्षा की कूप माण्डुकता को भी उजागर करने का प्रयास किया है। प्रियंगुमंजरी और मल्लिका का संवाद राजसत्ता के दर्प और जनसामान्य की मासूमियत के दर्प को उभारता है। रंगिणी और संगिनी के संवाद आधुनिक शिक्षण पद्धति तथा शोध कार्यों की अव्यावहारिकता का पर्दाफाश करता है, तो अनुस्वार और अनुनासिक के संवाद हास्यव्यंग्य की सृष्टि के साथ-साथ राजाधिकारियों की अक्रमन्यता तथा अदुर्दर्शिता को उजागर करता है।

नाटक के तीसरे अंक की शुरुआत कश्मीर शासन तंत्र के विफल होने, जनता भड़कर राजद्रोह पर उतारू होने और कालिदास द्वारा शासक पद छोड़कर काशी जाकर सन्यास लेने से होता है। इस अंक में मल्लिका और कालिदास के दो अत्यंत लंबे स्वगातालाप है। मल्लिका सोचती है, जिसके कारण वह टूटती-बिखरती रही फिर भी उसकी रचनाओं को देखकर वह अपने जीवन को सार्थक मानती रही उसी ने मल्लिका के सत्ता बोध को निरर्थक कर दिया। कालिदास के विषय में उठे अफ़वाहों को लेकर वह सोचती है, "व्यवसायी कहते थे, उज्जयिनी में अपवाद है, तुम्हारा बहुत-सा समय वारांगणाओं के सहवास में व्यतीत होता है।... परन्तु तुमने वारांगणा का यह रूप भी देखा है? आज तुम मुझे पहचान सकते हो?"[13]

मल्लिका भौतिक अवस्था तथा दबाव की वज़ह से विलोम से विवाह कर वारांगनत्व को स्वीकार करती है। क्योंकि विलोम से उसका जुड़ाव प्रेम रहित मात्र दैहिक जुड़ाव था। अपनी बच्ची की ओर इशारा करते हुए कालिदास के प्रति उसका स्वगत कथन है, "इस जीव को देखते हो? पहचान सकते हो? यह मल्लिका है जो धीरे-धीरे बड़ी हो रही है और माँ के स्थान पर अब मैं उसकी देख-भाल करती हूँ।... यह मेरे अभाव की संतान है। जो भाव तुम थे, वह दूसरा नहीं हो सका, परन्तु अभाव के कोष्ठ में किसी दूसरे की जाने कितनी –कितनी आकृतियाँ हैं! जानते हो मैंने अपना नाम खोकर एक विशेषण उपार्जित किया है और अब मैं अपनी दृष्टि में नाम नहीं, केवल एक विशेषण हूँ।"[14] मल्लिका के अंतहीन त्रासदी को उजागर करता है।

"इस जीव को देखते हो? पहचान सकते हो? यह मल्लिका है जो धीरे-धीरे बड़ी हो रही है और माँ के स्थान पर अब मैं उसकी देख-भाल करती हूँ।... यह मेरे अभाव की संतान है। जो भाव तुम थे, वह दूसरा नहीं हो सका, परन्तु अभाव के कोष्ठ में किसी दूसरे की जाने कितनी –कितनी आकृतियाँ हैं! जानते हो मैंने अपना नाम खोकर एक विशेषण उपार्जित किया है और अब मैं अपनी दृष्टि में नाम नहीं, केवल एक विशेषण हूँ।"

तीसरे अंक में कालिदास ग्राम-प्रांतर लौट आता है और मल्लिका से मिलता है। राकेश जी ने इस नाटक के अंत में यह दर्शाने का प्रयास किया है कि, एक रचनाकार का व्यक्तित्व सत्ता के द्वारा दी गई सुख-सुविधाओं के प्रलोभन में नहीं फ़स सकता। वह अपनी रचनाधर्मिता और प्रेरणा की ओर अवश्य उन्मुख होगा। यही वज़ह है कि, इस नाटक में कालिदास ने अपनी सर्जनात्मक प्रेरणा तथा अपनी वास्तविक भूमि की ओर लौटता है। उसका कथन है, "मैंने उस जीवन और वातावरण में रहकर बहुत कुछ लिखा है। परन्तु मैं जानता हूँ कि मैंने वहाँ रहकर कुछ नहीं लिखा। जो कुछ लिखा है वह यहाँ के जीवन का ही संचय था। 'कुमारसंभव' की पृष्ठभूमि यह हिमालय है और तपस्विनी उमा तुम हो। 'मेघदूत' के यक्ष की पीड़ा मेरी पीड़ा है और विरह-विमर्दिता यक्षिणी तुम हो- यद्यपि मैंने स्वयं यहाँ होने और तुम्हें नगर में देखने की कल्पना की। 'अभिज्ञान शाकुंतल' में शकुंतला के रूप में तुम्हीं मेरे सामने थीं। मैंने जब-जब लिखने का प्रयत्न किया तुम्हारे और अपने जीवन के इतिहास को फिर-फिर दोहराया। और जब उससे हटकर लिखना चाहा, तो रचना प्राणवान् नहीं हुई। 'रघुवंश' में अज का विलाप मेरी ही वेदना की अभिव्यक्ति है और...।"[15]

यद्यपि कालिदास अपनी प्रेरणा को लेकर पूरी तरह से प्रतिबद्ध है। तथापि मल्लिका की बच्ची के रोने की आवाज़ को सुनकर भाग खड़ा होता है। नाटककार ने यह दर्शाने का प्रयास किया, एक कलाकार भी भावना और स्थूल देह दोनों को अलग नहीं मानता। वह अपने प्रेम को समग्र रूप में स्वीकार करता है। उसे न ही तो केवल देह रहित मन चाहिए और न ही मन रहित शुष्क देह। कालिदास यह जान गया की मल्लिका अपनी दैहित पवित्रता खो चूँकि है तो ग्राम-प्रांतर से भी उसका पलायन स्वाभाविक है।

नाटक का शीर्षक 'आषाढ़ का एक दिन' पूरी तरह से सार्थक है। नाटक के तीनों अंकों की शुरुआत और अंत वर्षा, बिजली तथा मेघ से होती है। परन्तु सभी अंकों में इसका संकेत बदलता रहता है। पहले अंक में आषाढ़ का बारिश मल्लिका के लिए सौन्दर्य तथा सुख की अनुभूति देती है तो इस अंक के अंत में मेघों का छाना उसके ह्रदय में अवसाद का संकेत देता है। दूसरे और तीसरे अंक में आषाढ़ की बारिश यातना ग्रस्त जीवन में अश्रु वर्षण से जुड़ जाती है। नाटक के अंत में कालिदास का भाग खड़ा होना मल्लिका को अंतहीन आँसू में ढूबों देता है। विडम्बना तो यह है कि, वह भी कालिदास के पीछे जाना चाहती है। किन्तु भावनाओं के साथ कुलाचे भरने वाला मल्लिका का मन अपनी गोद में बच्ची को देखकर उसके पाँवों में कर्तव्य-बोध की बेडियां डाल देता है। उसके कदम उठते हैं पर बच्ची के प्रति दायित्वबोध के कारण वहीं जड़ित भी हो जाते हैं। मोहन राकेश जी ने लिखा है, "जो भावना में होगा, निश्चित तौर पर वह यातना में होगा।"[16] यह नाटक मल्लिका और कालिदास के माध्यम से जीवन की स्वतंत्रता, चयन तथा वरण के आगे लगे प्रतिबंधो को उद्घाटित करता है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र के पश्चात् नाटक और रंगमंच में द्वैत की स्थिति स्पष्ट रूप में नज़र आती है। उस द्वैत को अद्वैत में परिवर्तित करने वाले नाटककार हैं मोहन राकेश। उन्होंने अपने नाटकों को रंगमंच के लिहाजे से खड़ा किया। वे नाटक की भूमिका में लिखते हैं, "हिन्दी रंगमंच के विकास से निस्संदेह यह अभिप्राय नहीं है कि अत्याधुनिक सुविधाओं से संपन्न रंगशालाएँ राजकीय या अर्द्धराजकीय संस्थाओं द्वारा जहाँ-तहाँ बनवा दी जाएँ जिससे वहाँ हिन्दी नाटकों का प्रदर्शन किया जा सके। प्रश्न केवल आर्थिक सुविधा का ही नहीं, एक सांस्कृतिक दृष्टि का भी है। हिन्दी रंगमंच को हिन्दी-भाषी प्रदेश की सांस्कृतिक पूर्तियों और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करना होगा, रंगों और राशियों के हमारे विवेक को व्यक्त करना होगा। हमारे दैनंदिन जीवन के राग-रंग को प्रस्तुत करने के लिए, हमारे सम्वेदों और स्पंदनों को अभिव्यक्त करने के लिए, जिस रंगमंच की आवश्यकता है, वह पाश्चात्य रंगमंच से कहीं भिन्न होगा। इस रंगमंच का रूपविधान नाटकीय प्रयोगों के अभ्यंतर से जन्म लेगा और समर्थ अभिनेताओं तथा दिग्दर्शकों के हाथों उसका विकास होगा।"[17] यही वज़ह है इस नाटक के रंग संकेत, नाट्य भाषा और शिल्प इसकी सबल अभिव्यक्ति देने में सक्षम है।

संदर्भ :

1. राकेश, मोहन, 2008, लहरों के राजहंस, राजकमल प्रकाशन, नई हदल्ली-02: 19
2. तनेजा, जयदेव, (सं), 2012, नाट्य-विमर्श, अंकुर प्रकाशन, दिल्ली-51: 52
3. राकेश, मोहन, 2009, आषाढ़ का एक दिन, राजपाल एंड संज, कश्मीरी गेट, दिल्ली-06: 31
4. वहीं: 10
5. वहीं: 15
6. वहीं
7. वहीं: 26
8. वहीं: 92-94
9. वहीं: 40
10. वहीं: 12-13
11. वहीं: 33
12. वहीं: 46
13. वहीं: 47
14. वहीं: 93
15. वहीं
16. वहीं-101-102
17. वहीं: दो शब्द